श्रमण एवं श्रमणी के आचार में भेद

डॉ. पदमचन्द मुणोत

यद्यपि श्रमण एवं श्रमणी दोनों पंच महाव्रतधारी होकर पांच समितियों एवं तीन गुप्तियों का पालन करते हैं। आगम का अध्ययन करते हैं, तथापि शारीरिक संरचना के कारण श्रमण एवं श्रमणी के आचार में कई बिन्दु भिन्न हैं। उन आचारगत भिन्नताओं का उल्लेख प्रस्तुत आलेख में किया गया है। -सम्पादक

श्रमण के दो अर्थ मुख्य हैं। एक तो यह कि तप और संयम में जो अपनी पूरी शक्ति लगा रहा है, तपस्वी है, वह श्रमण है। दूसरा अर्थ है-त्रस-स्थावर, सब प्रकार के जीवों के प्रति जिसके अन्तःकरण में समभाव एवं हित कामना है वह श्रमण है। उसे 'समन' या समण भी कहते हैं। एवंविध स्त्री साधक को श्रमणी अथवा महासती जी कहा जाता है।

तप एवं संयम में स्थिर रहने के लिये भगवान् महावीर ने अपने ज्ञान के बल से एक आचारसंहिता उपदिष्ट की है, जिसका पूर्णता से पालन करने पर ही श्रमण एवं श्रमणी अपने लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त कर सकते हैं।

इस आचारसंहिता में श्रमण एवं श्रमणी के आचार में अनेक परिस्थितियों में भेद दर्शाया गया है। इन भिन्नताओं का कारण श्रमणियों की शारीरिक संरचना, उनमें रही कोमलता, लज्जा के भाव व अन्य अनेक परिस्थितियाँ हैं। सम्बन्धित आगम हैं- आचारांग, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प, दशाश्रुतस्कन्ध आदि।

श्रमण एवं श्रमणी के आचार में भेद का वर्णन बृहत्कल्प सूत्र के अनुसार यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. साधु-साध्वियों के लिये गाँव आदि में प्रवास करने की काल मर्यादा-

वर्ष के बारह मासः- चैत्र, वैसाख, ज्येष्ठ (जेठ), आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन (आसोज) कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ व फाल्गुन।

इनमें तीन मुख्य ऋतुएँ बनती हैं (भारत में)- 1. ग्रीष्म, 2. वर्षा (प्रावृट) और 3. हेमन्त (शीत)

चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ ये चार माह ग्रीष्म के हैं। अगले चार माह श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक वर्षा अथवा प्रावृट् के होते हैं और शेष माह हेमन्त (शीत) के।

वर्षा काल में अप्कायिक, वनस्पतिकायिक एवं एकेन्द्रिय तथा समूर्च्छिम त्रस जीवों की उत्पत्ति विशेष होती है। अतः इस काल में विचरण करने से इन जीवों की विशेष हिंसा होने की सम्भावना रहती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साधु-साध्वियों को इस काल में स्थिरवास अर्थात् एक ही स्थान पर ठहरने का आचार है, जिसे पर्युषण कल्प (दशाश्रुत स्कन्ध-अष्टम दशा) कहते हैं।

यह कहावत है कि 'रमता राम, भटकता जोगी' अथवा 'बहती नदी और विचरणशील संत' सदैव निर्मल होते हैं। अतः जैन साधु-साध्वियाँ सदैव भ्रमणशील रहते हैं। यह लोकोक्ति है कि विहरणशीलता या पर्यटनशीलता साधु-जीवन की पावनता की द्योतक है। किसी एक ही स्थान पर स्थायी निवास करने से अनेकविध रागात्मक, मोहात्मक स्थितियाँ बनने की आशंका रहती है, अतएव जैन साधु-साध्वी के किसी एक स्थान में प्रवास के सम्बन्ध में कुछ मर्यादाएँ हैं। पयुर्षणकल्प अर्थात् चातुर्मास के अतिरिक्त आठ महीने में साधु या साध्वी को किसी एक स्थान पर स्थायी प्रवास करना नहीं कल्पता है। किसी एक गाँव या नगर बस्ती में साधु द्वारा एक मास तक (29 दिन) तथा साध्वी को दो चन्द्रमास (58 दिन) तक ठहरना कल्पता है।

साधुओं की अपेक्षा साध्वियों को किसी एक स्थान पर दुगुने समय तक प्रवास करने का कल्प है। साध्वियों के दैहिक संहनन, शरीर बल, विविध काल की दैहिक स्थितियाँ इत्यादि को दृष्टि में रखते हुए उनके संयम जीवितव्य की सुरक्षापूर्ण संवर्द्धना हेतु यह आवश्यक जाना एवं माना गया। साधु का विहार 9 कोटि का तथा साध्वी का 5 कोटि का कहा जाता है।

2. क्रय-विक्रय केन्द्रवर्ती स्थान में ठहरने का कल्प-

साध्वियों का आपणगृह (जहाँ वस्तुओं का व्यापक रूप से क्रय-विक्रय होता है, उस स्थान के मध्य स्थित गृह या स्थानक, उपाश्रय आदि स्थान), रथ्यामुख (वह मार्ग जिससे यान-वाहनों का आना-जाना सुगम एवं बहुतायत से हो, उस मार्ग पर जिस भवन का द्वार खुलता हो, वह रथ्यामुख कहा जाता है), शृंगाटक (वह स्थान, जहाँ से तीन रास्ते निकलते हों) या त्रिक, चतुष्क (चार रास्तों के मिलने के स्थान-चौक), चत्वर (जहाँ से छह या उससे अधिक रास्ते निकलते हों) अथवा अंतरापण (वह स्थान जो हाट या बाजार के रास्ते पर हो) में प्रवास करना नहीं कल्पता है।

जबकि साधुओं को ऐसे स्थानों पर प्रवास करना कल्पता है। (बृहत्कल्प सूत्र)

3. कपाट रहित स्थान में साधु-साध्वियों की प्रवास मर्यादा -

साध्वियों को खुले द्वार वाले अर्थात् कपाट रहित स्थान में रहना नहीं कल्पता। उस खुले कपाट वाले स्थानक/उपाश्रय में एक पर्दा भीतर तथा एक पर्दा बाहर बाँधकर-मध्यवर्ती मार्ग रखते हुए चिलमिलिकावत्-महीन छिद्रयुक्त दो पर्दों को व्यवस्थित कर रहना कल्पता है। यह उनकी शील रक्षा हेतु, लज्जा निवारण हेतु आवश्यक है। जिससे बाहर आने-जाने वालों की दृष्टि उन पर न पड़े।

साधुओं को खुले द्वार-कपाट रहित स्थान में रहना भी कल्पता है। (बृहत्कल्प सूत्र)

4. साधु-साध्वी को घटीमात्रक रखने का विधि-निषेध-

साध्वियों को भीतर से लिपा हुआ-चिकना किया हुआ, छोटे घड़े के आकार का पात्र धारण करना,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रखना कल्पता है, जबकि साधुओं को अन्दर से लिपा हुआ घटीमात्रक (उपर्युक्त पात्र) रखना और उपयोग करना नहीं कल्पता है। (बृहत्कल्प सूत्र)

5. सागारिक की निश्रा में प्रवास करने का विधान-

निर्ग्रन्थिनियों (साध्वियों) को सागारिक की अनिश्रा-बिना आश्रय के रहना नहीं कल्पता है। उनको सागारिक की निश्रा-आश्रय में रहना कल्पता है। साधुओं को प्रवास में सागारिक की निश्रा-प्रश्रय (आश्रय) अपरिहार्य नहीं है, निश्रा हो तो उत्तम है।

6. सागारिक युक्त स्थान में आवास का विधि निषेध-

साधु-साध्वियों को सागारिक (शय्यातर)-गृहस्थ के आवास युक्त स्थानक/ उपाश्रय (स्थान) में प्रवास करना नहीं कल्पता है। केवल स्त्री निवास युक्त (स्त्री सागारिक) स्थानक/उपाश्रय में साधुओं का प्रवास वर्जित है, उसी प्रकार केवल पुरुष निवासयुक्त (पुरुष सागारिक) स्थानक/उपाश्रय में साध्वियों का प्रवास वर्जित है।

केवल पुरुष निवास युक्त (पुरुष सागारिक) स्थानक/ उपाश्रय में साधुओं का प्रवास कल्पता है और केवल स्त्री निवास युक्त (सागारिक)स्थानक/ उपाश्रय में साध्वियों का प्रवास कल्पता है। (बृहत्कल्प सूत्र)

7. प्रतिबद्धशय्या (स्थानक/उपाश्रय) में प्रवास का विधि-निषेध-

प्रतिबद्धशय्या (शय्यातर के आवास में लगे हुए (स्थानक/उपाश्रय)में साधुओं का प्रवास कल्पनीय नहीं है। जबकि साध्वियों का प्रतिबद्धशय्या में प्रवास करना कल्पता है। प्रतिबद्ध के दो भेद बताये गए हैं- (1) द्रव्य प्रतिबद्ध, (2) भाव प्रतिबद्ध। भित्तिका आदि के व्यवधान से युक्त आवास द्रव्य-प्रतिबद्ध कहा गया है। भाव प्रतिबद्ध का आशय उस आवास से है, जिससे भावों में विकृति आना आशंकित है। चूर्णिकार ने उसके चार भेद किये हैं- 1. जहाँ गृहवासी स्त्री-पुरुषों का एवं साधु का प्रस्रवण (मूत्रोत्सर्ग) स्थान एक हो। 2. जहाँ घर के लोगों एवं साधुओं के बैठने का स्थान एक ही हो। 3. जहाँ स्त्रियों का रूप सौन्दर्य आदि दृष्टिगोचर होता हो। 4. जहाँ स्त्रियों की भाषा, आभरणों की झंकार तथा काम-विलासिता एवं गोप्य शब्दादि सुनाई पड़ते हों।

इन चारों भेदों में सूचित प्रसंग ऐसे हैं, जिनसे मानसिक विचलन आशंकित है। (बृहत्कल्प सूत्र)

8. प्रतिबद्ध मार्ग युक्त स्थानक/ उपाश्रय में ठहरने का कल्प-अकल्प-

जिस स्थानक/ उपाश्रय में जाने का रास्ता गाथापति कुल-गृहस्थ वृन्द के घर के बीचों-बीच होकर हो, उसमें साधुओं का रहना नहीं कल्पता है, जबकि उसमें साध्वियों को प्रवास करना कल्पता है।(बृहत्कल्प सूत्र)

9. विश्रामगृह आदि में ठहराव का विधि-निषेध-

साध्वियों को आगमनगृह-धर्मशाला आदि में, चारों ओर से खुले घर में, बांस आदि से निर्मित जालीदार घर में, वृक्ष आदि के नीचे या खुले आकाश या केवल चारदीवारी युक्त गृह में ठहरना नहीं कल्पता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जबकि साधुओं को ऐसे सभी स्थानों पर रहना कल्पता है। (बृहत्कल्प सूत्र)

10. निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनियों को एक दूसरे के स्थानक/उपाश्रय में अकरणीय क्रियाएँ-

निर्ग्रन्थों को निर्ग्रन्थिनियों के स्थानक/ उपाश्रय में खड़े रहना, बैठना, लेटना या पार्श्व परिवर्तन करना (त्वग्वर्त्तन), निद्रा लेना, प्रचला संज्ञक निद्रा लेना, ऊंघना, अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार ग्रहण करना, मल, मूत्र, कफ और सिंघानक-नासिका मैल परठना (परिष्ठापित करना), स्वाध्याय करना, ध्यान करना या कायोत्सर्ग कर स्थित रहना नहीं कल्पता है। इसी प्रकार निर्ग्रन्थिनियों को निर्ग्रन्थों के स्थानक/उपाश्रय में खड़े रहना यावत् कायोत्सर्ग कर स्थित रहना नहीं कल्पता है। (बृहत्कल्प सूत्र)

11. अवग्रहानन्तक और अवग्रह पट्टक धारण का विधि-निषेध-

यहाँ प्रयुक्त अवग्रहानन्तक और अवग्रह पट्टक शब्द गुप्त अंगों को ढकने के लिये प्रयुक्त होने वाले वस्त्रों के लिये आए हैं। अवग्रहानन्तक लंगोट या कौपीन के लिये तथा अवग्रह पट्टक कौपीन के ऊपर के आच्छादक के लिए प्रयुक्त हुआ है।

साधुओं के अवग्रहानन्तक और अवग्रह पट्टक धारण करना- अपने पास रखना और उपयोग में लेना नहीं कल्पता है। साध्वियों को इनका धारण करना, अपने पास रखना और उपयोग में लेना कल्पता है। (बृहत्कल्प सूत्र)

12. साध्वी को एकाकी गमन का निषेध-

निर्ग्रन्थिनी को एकाकिनी होना नहीं कल्पता है। एकाकिनी निर्ग्रन्थिनी को गृहस्थ के घर में आहारार्थ प्रविष्ट होना और निकलना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थिनी को अकेले विचार भूमि (उच्चार-प्रस्रवण विसर्जन स्थान) और विहार भूमि (स्वाध्याय स्थान) में जाना कल्पनीय नहीं कहा गया है।

साध्वी को एक गाँव से दूसरे गाँव एकल विहार करना एवं वर्षावास एकाकी करना कल्पय नहीं होता।

विहार तथा प्रवास में कम से कम तीन साध्वियाँ होना आवश्यक है। गोचरी आदि में कम से कम दो साध्वियों का होना आवश्यक है।(बृहत्कल्प सूत्र)

13. साध्वी को वस्त्र-पात्र रहित होने का निषेध-

साध्वी का वस्त्र रहित होना तथा पात्र रहित होना नहीं कल्पता है। इसीलिये साध्वी जिनकल्पी नहीं बन सकती। (द्रष्टव्य- आचारांग सूत्र, द्वितीय श्रुतस्कंध, अध्ययन 1, उद्देशक 3, गाथा 20)

14. साध्वी के लिये आसनादि का निषेध-

(i) साध्वी को अपने शरीर का सर्वथा व्युत्सर्जन कर-वोसिरा कर रहना नहीं कल्पता।

(ii) साध्वी को ग्राम यावत् (राजधानी) सन्निवेश के बाहर अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर सूर्याभिमुख होकर, एक पैर के बल खडे होकर आतापना लेना नहीं कल्पता। अपितु स्थानक/ उपाश्रय के भीतर,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्रावृत होकर, अपनी भुजाएँ नीचे लटकाकर, दोनों पैरों को समतल कर इस स्थिति में खड़े होकर आतापना लेना कल्पता है।

(iii) साध्वी को खडे होकर कायोत्सर्ग करने का अभिग्रह करना नहीं कल्पता है।

(iv) साध्वी को (एक रात्रिक आदि) प्रतिमाओं के आसनों में स्थित होने का अभिग्रह करना नहीं कल्पता है।

(v) साध्वी को निषद्याओं- बैठकर किये जाने वाले आसन विशेषों में स्थित होना नहीं कल्पता है।

(vi) साध्वी को उत्कुटुकासन में स्थित होने का अभिग्रह करना नहीं कल्पता है।

(vii) साध्वी को वीरासन, दण्डासन, लकुटासन में अभिग्रह करना नहीं कल्पता है।

(viii) साध्वी को अधोमुखी (अवाङ्मुखी) स्थित होने का अभिग्रह करना नहीं कल्पता है।

(ix) साध्वी को मुँह ऊँचा कर सोने के अभिग्रह में स्थित होना नहीं कल्पता।

(x) साध्वी को आम्र कुब्जासन में स्थित होने का अभिग्रह करना नहीं कल्पता।

(xi) साध्वी को एक पार्श्वस्थ होकर सोने का अभिग्रह कर स्थित होना नहीं कल्पता है। (बृहत्कल्पसूत्र)

15. साध्वियों के लिये आकुंचन पट्टक धारण का निषेध-

साध्वियों के लिए आकुंचन पट्टक धारण करना और उपयोग में लेना नहीं कल्पता है, साधुओं के लिए आकुंचन पट्टक रखना और उसका उपयोग करना कल्पता है।(बृहत्कल्पसूत्र)

16. सहारे के साथ बैठने का विधि-निषेध-

साध्वियों को आश्रय या सहारा लेकर बैठना या करवट लेना (सोना) नहीं कल्पता है। जबकि साधुओं को अवलम्बन या सहारा लेकर बैठना या करवट लेना कल्पता है। (बृहत्कल्पसूत्र)

17. शृंगयुक्त पीठ आदि के उपयोग का विधि-निषेध-

साध्वियों को शृंगाकार युक्त कंगूरों सहित पीढे या पट्ट पर बैठना या करवट बदलना नहीं कल्पता, जबकि साधुओं को यह सब कल्पता है। (बृहत्कल्पसूत्र)

18. सवृन्त तुम्बिका रखने का विधि-निषेध-

साध्वियों को डण्ठलयुक्त तुम्बपात्र रखना एवं उसका उपयोग करना नहीं कल्पता, जबकि साधुओं को डण्ठल सहित तुम्बपात्र रखना एवं उसका उपयोग करना कल्पता है। (बृहत्कल्पसूत्र)

19. सवृन्त पात्र केशरिका रखने का विधि-निषेध-

साध्वियों को सवृन्त पात्र प्रमार्जनिका रखना एवं उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है, जबकि साधुओं को सवृन्त पात्र प्रमार्जनिका रखना और उसका उपयोग करना कल्पता है। (बृहत्कल्पसूत्र)

20. दण्डयुक्त पाद प्रोञ्छन का विधि-निषेध-

साध्वियों को दण्डयुक्त पादप्रोंछन रखना एवं उसको उपयोग में लेना नहीं कल्पता, जबकि साधुओं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

को दण्डयुक्त पाद प्रोंछन रखना और उसको उपयोग में लेना कल्पता है। (बृहत्कल्पसूत्र)

21. मूत्र के आदान-प्रदान का निषेध-

साधुओं और साध्वियों को एक दूसरे का मूत्र भयानक रोगों के अतिरिक्त परस्पर गृहीत करना, पीना या उसकी मालिश करना नहीं कल्पता।

22. आचार्य पद देने का कल्प-

आचार्य पद साध्वी को नहीं दिया जाता। इसके अनेक कारण हैं:- (1) तीर्थंकर भगवान की आज्ञा नहीं है। (2) पुरुष ज्येष्ठ कल्प है। (3) पुरुष में स्त्री से ज्यादा गंभीरता होने के कारण यह प्रशासनिक पद नहीं दिया जाता। (4) विहार-गोचरी आदि अनेक प्रसंगों में साध्वी को अकेला जाना नहीं कल्पता है, जबकि साधु को अकेला जाना कल्पता है, जैसे-गौतम स्वामी।

23. साधु-साध्वियों का वन्दना व्यवहार-

एक दिन की दीक्षा पर्याय पालने वाला साधु भी सभी साध्वियों से ज्येष्ठ गिना जाता है अतः सभी साध्वियां चाहे उनमें से कोई 60-70 वर्ष या उसके अधिक काल की दीक्षा पर्याय पालन करने वाली हो तो भी उस साधु को वन्दन करती है।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. आचारांग सूत्र, भाग 2, अनुवादक- श्री रतनलाल डोसी- श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर, जनवरी-2006
2. बृहत्कल्प- अनुवादक एवं विवेचक-प्रो. (डॉ.) छगनलाल शास्त्री एवं डॉ. महेन्द्रकुमार रांकावत, श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर-2006
3. दशाश्रुतस्कन्ध- प्रो. (डॉ.) छगनलाल शास्त्री एवं डॉ. महेन्द्रकुमार रांकावत, श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर-2006
4. व्यवहार सूत्र- प्रो. (डॉ.) छगनलाल शास्त्री एवं डॉ. महेन्द्रकुमार रांकावत, श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर-2006
5. विनयबोधिकण- लेखक-विनयमुनि, मणिबेन कीर्तिलाल मेहता, आराधना भवन, कोयम्बटूर, नवम्बर-2006
6. उत्तराध्ययन- आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा., सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर
7. दशवैकालिक सूत्र- आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा., सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

-7 न 12, जवाहर नगर, जयपुर-302004 (राज.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org